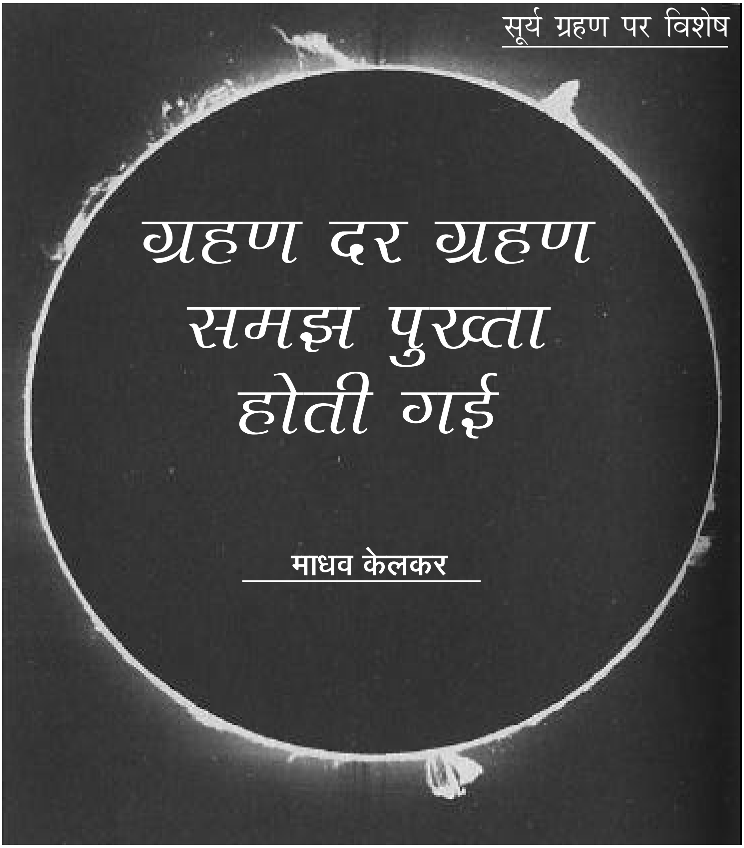

ग्रहण दर ग्रहण समझ पुख्ता होती गई

माधव केलकर

22 जुलाई 2009 को एक बार फिर भारत के काफी बड़े हिस्से में पूर्ण सूर्य ग्रहण दिखाई देगा। पिछले तीस वर्षों में भारत में पूर्ण सूर्य ग्रहण दिखने का यह कम-से-कम चौथा मौका है। अब भारत में भी सूर्य ग्रहण देखने के लिए लोग दूर-दराज़ के इलाकों तक पहुँचते हैं। विशेष तरह के चश्मे, कैमरे और टेलिस्कोप से लैस होकर लोग ग्रहण का लुत्फ उठाते हैं, बिलकुल मेले जैसा माहौल होता है।

इस दौरान अखबारों, पत्रिकाओं और विविध चैनलों पर सूर्य ग्रहण को काफी तव्वजो दी जाती है। काफी पहले से पूर्ण सूर्य ग्रहण की पट्टी दर्शाते हुए नक्शे, ग्रहण लगने का समय, पूर्णता का समय, उन खास जगहों के नाम जहाँ से पूर्ण ग्रहण

दिखाई देगा जैसी ढेरों जानकारियाँ हाज़िर कर दी जाती हैं।

आम जनता के लिए पूर्ण सूर्य ग्रहण में मज़ा है, कौतुहल है; वहीं वैज्ञानिक बिरादरी के लिए सूर्य ग्रहण कई समस्याओं के समाधान तलाशने का ज़रिया। यह सब इतना सहज-सा दिखता है कि ऐसा लगता ही नहीं कि सूर्य ग्रहण विविध पड़ाव पार करके यहाँ तक पहुँचा होगा।

यदि सूर्य ग्रहण के इतिहास पर नज़र डालें तो समझ में आता है कि 17वीं सदी तक ग्रहण की तारीख और समय की गणनाओं के बारे में कई लोगों ने काफी महारत हासिल कर ली थी और पृथ्वी-सूर्य-चाँद की गतियों से भी वे वाकिफ थे।

लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि पिछले तीन सौ सालों में सूर्य ग्रहण को लेकर हमारी सोच में काफी बदलाव आया है। इस दौरान सिर्फ छाया के खेल के रूप में न देखते हुए सूर्य ग्रहण को विज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ भी जोड़कर देखा जाने लगा। खगोल विज्ञान जैसे विषयों में वैचारिक क्रान्ति लाने में भी सूर्य ग्रहण ने महती भूमिका निभाई है। आइए, पिछले तीन सौ वर्षों में सूर्य ग्रहण के विविध पड़ावों पर एक नज़र डालते हैं।

ग्रहण के नक्शे प्रकाशित करना

दक्षिणी इंग्लैंड में 1715 को दिखाई देने वाला पूर्ण सूर्य ग्रहण विविध पड़ावों में से पहला प्रमुख पड़ाव था। इस ग्रहण से पहले सूर्य ग्रहण के नक्शे बनाने या प्रकाशित करने की कोई परम्परा नहीं थी। अपवाद स्वरूप 1626 में जॉन स्पीड और 1700 में कारेल एलार्ड ने छोटे चित्रों के माध्यम से धरती के ग्लोब पर कुछ महाद्वीप दिखाकर, सूर्य ग्रहण वाले इलाकों को चिन्हित करने का प्रयास किया था।

इसलिए कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम 1715 के सूर्य ग्रहण के पहले एडमण्ड हैली (जिन्हें हम प्रमुखतः हैली पुच्छल तारे के सन्दर्भ में याद करते हैं) ने सूर्य ग्रहण का नक्शा जारी किया। इस नक्शे में चाँद की छाया इंग्लैंड के किस-किस हिस्से से होकर गुज़रेगी, पूर्ण सूर्य ग्रहण की पट्टी की चौड़ाई, पट्टी में कितने मिनट चाँद सूर्य को ढाँककर रखेगा जैसी सूचनाएँ भी दी गई थीं। हैली के इस नक्शे में पूर्ण सूर्य ग्रहण की पट्टी (चाँद की मुख्य छाया) तो बनी थी, किन्तु खण्ड ग्रहण दिखने वाली पट्टी (चाँद की उपछाया) या इलाकों को नहीं दिखाया गया था। लेकिन यह तो बस शुरुआत ही थी।

1715 का खग्रास सूर्य ग्रहण इंग्लैंड में अधिकतम तीन मिनट दिखाई देने वाला था। हैली ने ग्रहण के दौरान अपने नक्शे की जाँच की व्यवस्था भी की थी। उन्होंने लगभग एक दर्जन स्थानों पर चाँद की मुख्य छाया की चौड़ाई का अन्दाज़ लगाने और मुख्य छाया में कितने मिनट चाँद सूर्य को ढाँककर रखता है इसे मालूम करने

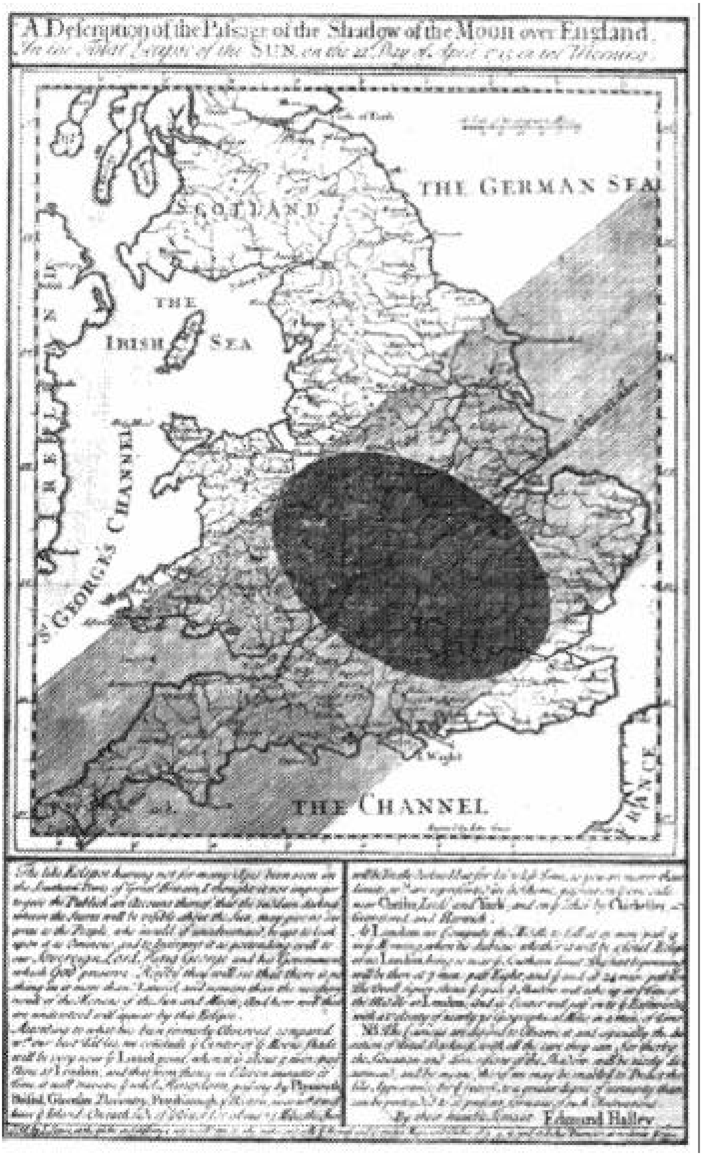

एडमण्ड हैली द्वारा जारी किया गया 1715 के सूर्य ग्रहण का नक्शा।

की कोशिश भी की थी। यह पहला मौका था जब ग्रहण के बारे में इस तरह के ब्यौरे इकट्ठा किए जा रहे थे। इस ग्रहण के दौरान इकट्ठा जानकारी से एडमण्ड हैली को समझ में आया कि इंग्लैंड में जहाँ-जहाँ पूर्ण सूर्य ग्रहण दिखाई दिया और नक्शे में पूर्ण सूर्य ग्रहण की पट्टी की जो चौड़ाई उन्होंने निर्धारित की थी उसमें कुछ किलोमीटर का अन्तर आ रहा है, साथ ही चाँद की मुख्य छाया वाली पट्टी के विविध स्थानों पर पूर्ण ग्रहण दिखाई देने की अवधि का जो पूर्वानुमान उन्होंने लगाया था, उसमें भी सुधार की ज़रूरत है।

खैर, हैली ने अपने नक्शों में सुधार तो किया ही साथ ही 1724 के सूर्य ग्रहण के लिए भी नक्शा जारी किया। रॉबर्ट ब्राउन, विस्टन जैसे गणितज्ञों ने भी ग्रहण के नक्शों की सटीकता पर काम किया जिससे अगले पचास सालों में इनमें काफी सुधार होते चले गए और ग्रहण सम्बन्धी सटीक नक्शे यूरोप की विभिन्न वैज्ञानिक सोसायटी की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। जल्द ही ये नक्शे अखबारों में भी प्रकाशित होने लगे और ग्रहण सम्बन्धी जानकारियाँ आम जनता तक आसानी से पहुँचने लगीं।

स्पेक्ट्रोस्कोपी और फोटोग्राफी

सूर्य ग्रहण के आधुनिक इतिहास में दूसरा अहम पड़ाव एस्ट्रोनॉमी में स्पेक्ट्रोस्कोपी का इस्तेमाल किया जाना है। टेलिस्कोप की खोज के बाद सौर्यमण्डल के ग्रहों के अलावा कई तारों का गहन निरीक्षण कर पाना सम्भव हो पाया था। 1781 में यूरेनस और 1846 में नेपच्यून की खोज से टेलिस्कोप ने धाक जमा ली थी। लेकिन टेलिस्कोप की अपनी सीमाएँ थी। 1835 में फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगॅस्त कॉम्ते ने कहा था कि आकाशीय पिण्डों के रासायनिक संघटन, उन पर पाए जाने वाले खनिजों और जैविक पदार्थों की जानकारी के लिए किसी और उपकरण आदि की ज़रूरत होगी। ऑगॅस्त की बातों में दम था। उस समय दूर के तारों की तो बात छोड़िए सबसे पास के तारे सूर्य की रासायनिक बनावट के बारे में भी कोई खास जानकारी हमारे पास नहीं थी।

19वीं सदी में रसायन शास्त्र का सुनहरा दौर चल रहा था। नए तत्वों की खोज हो रही थी। आवर्त सारणी बनाने की कोशिश चल रही थी। न्यूटन द्वारा दिखाए गए सतरंगी स्पेक्ट्रम को देखने के लिए अब बेहतर तकनीक उपलब्ध थी। जर्मनी के फ्राउनहोफर (1787-1826) ने सूरज के सतरंगी वर्णक्रम को जब उन्नत प्रकाशीय उपकरणों से देखा तो उन्होंने पाया कि इस सतरंगी स्पेक्ट्रम में पाँच-छह सौ काली लकीरें भी मौजूद हैं। उन्होंने यही प्रयोग चाँद और अन्य ग्रहों से आने वाले प्रकाश के साथ दोहराया तब भी स्पेक्ट्रम में काली लकीरें दिखाई दे रही थीं। सूरज की तरह चमकदार

एक और तारे सीरियस से आने वाले प्रकाश के वर्णक्रम में भी ये काली रेखाएँ मौजूद थीं। फ्राउनहोफर ने प्रयोगशाला में निर्मित सफेद रोशनी की जाँच की तो पाया कि यह बिना काली लकीरों वाला सामान्य स्पेक्ट्रम है। हालाँकि फ्राउनहोफर इन काली लकीरों के बारे में कुछ खास नहीं बता पाए लेकिन उनके प्रयोगों और अवलोकन से इतना पक्का हो गया कि इन काली रेखाओं का उद्गम सूर्य से ही जुड़ा है। अगले 30-40 साल फ्राउनहोफर द्वारा देखी गई काली रेखाओं की कोई व्याख्या सामने नहीं आई। लेकिन सूर्य के स्पेक्ट्रम में इन गहरी-काली लकीरों को अँग्रेज़ी अक्षर D से दर्शाया जाने लगा। कुछ वर्षों बाद पता चला कि ये डी रेखाएँ

स्पेक्ट्रम और स्पेक्ट्रोस्कोपी

हरेक तत्व में इलेक्ट्रॉनों के ऊर्जा स्तर का अपना विशिष्ट पैटर्न होता है। इसलिए जब उन्हें उत्तेजित किया जाता है तब तत्व से खास किस्म की आवृत्ति के रंगों का पैटर्न मिलता है। रंगों के इस पैटर्न को देखने के लिए इस प्रकाश को एक प्रिज़्म में से गुज़ारना पड़ता है। यदि प्रिज़्म तक आने वाला प्रकाश एक बारीक झिर्री से होता हुआ आए तो रंगों के पैटर्न की स्पष्टता और बढ़ जाती है। प्रिज़्म झिर्री वाली इस व्यवस्था को स्पेक्ट्रोस्कोप कहा जाता है और दिखाई देने वाले रंगों के पैटर्न को वर्णक्रम या स्पेक्ट्रम।

अभी हमने जिस स्पेक्ट्रम की बात की है उसे उत्सर्जन का स्पेक्ट्रम कहा जाता है क्योंकि यहाँ तत्व ने प्रकाश उत्सर्जित किया था। स्पेक्ट्रोस्कोप से एक और किस्म का स्पेक्ट्रम देखा जा सकता है वह है अवशोषण का स्पेक्ट्रम। इसमें स्पेक्ट्रोस्कोप और प्रकाश के स्रोत के बीच गैस को रखा जाए तो मिलने वाले स्पेक्ट्रम में रंगों के साथ-साथ कुछ काली लकीरें भी बिखरी हुई होती हैं। ये काली लकीरें इसलिए उभरती हैं क्योंकि गैसों के परमाणुओं ने कुछ प्रकाश की कुछ आवृत्तियों को अवशोषित कर लिया है। जिन आवृत्तियों को सोख लिया गया है, वर्णक्रम में वहाँ काली लकीरें दिखाई देती हैं। नीचे दिए दोनों स्पेक्ट्रम को ध्यान से देखिए। ये दोनों वर्णक्रम एक ही तत्व के हैं। तत्व के उत्सर्जन के स्पेक्ट्रम में जहाँ-जहाँ चमकीली रेखाएँ दिखाई दे रही हैं ठीक उन्हीं जगहों पर तत्व के अवशोषण वाले स्पेक्ट्रम में काली रेखाएँ दिखाई दे रहीं हैं।

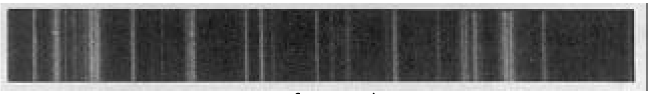

उत्सर्जन का स्पेक्ट्रम

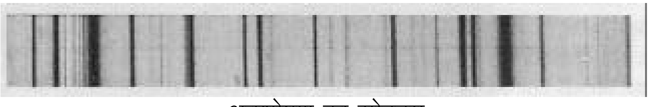

अवशोषण का स्पेक्ट्रम

सोडियम के स्पेक्ट्रम से मेल खाती हैं।

दो वैज्ञानिकों बुन्सन और किरचॉफ की जोड़ी ने स्पेक्ट्रोस्कोपी के काम को आगे बढ़ाया। जल्द ही किरचॉफ ने बताया कि कोई भी तत्व जब गैस या वाष्प के रूप में हो तब वह वर्णक्रम की लगभग उन्हीं काली लकीरों को अवशोषित करता है जिन्हें वह खुद उत्सर्जित कर सकता है। किरचॉफ के इन निष्कर्षों से वर्णक्रम के विश्लेषण में काफी मदद मिली। साथ ही खगोल-विदों को दूर के तारों या अन्य पिण्डों की रासायनिक बनावट को जानने के लिए वहाँ से कोई नमूना लाने की ज़रूरत नहीं रह गई।

बुन्सन और किरचॉफ जानते थे कि हरेक तत्व का अपना एक खास वर्णक्रम होता है - जैसे हमारे फिंगरप्रिंट। इस खासियत की वजह से किसी भी तारे या सूरज की रोशनी के वर्णक्रम की तुलना, धरती पर पहले से ज्ञात तत्वों के वर्णक्रम से करते हुए, सूरज की रासायनिक बनावट के बारे में जानकारी हासिल की जा सकती है। स्पेक्ट्रोस्कोपी की मदद से सूर्य की रासायनिक बनावट को समझने का अहम पड़ाव 1868 का सूर्य ग्रहण था। 1868 में भारत से दिखाई देने वाले सूर्य ग्रहण में स्पेक्ट्रस्कोपी के इस्तेमाल से सूर्य में मौजूद एक प्रमुख तत्व हीलियम की खोज की गई। तब तक हीलियम की धरती पर उपस्थिति दर्ज नहीं हुई थी। सूरज की रोशनी में हीलियम खोजने के कुछ साल बाद हीलियम को धरती पर खोजा जा सका। (देखिए बॉक्स)

आखिरकार, फ्राउनहोफर रेखाओं

हिलियम की खोज

1868 का पूर्ण सूर्य ग्रहण भारत की भूमि से दिखाई देने वाला था। इस ग्रहण के अवलोकन के लिए पी.जे.सी. जेनसन भारत आए थे। पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान जेनसन ने अपने स्पेक्ट्रोस्कोप में चमकीली पीली रेखाएँ दर्ज़ कीं। उस समय जेनसन का अनुमान था कि ये रेखाएँ सोडियम की होनी चाहिए। इसी समय नॉर्मन लोकियर ने भी ऐसी ही पीली रेखाओं को दर्ज़ किया था।

सूक्ष्म अवलोकनों से यह बात साफ हो गई कि ये रेखाएँ सोडियम की तो छोड़िए उस समय तक ज्ञात किसी भी तत्व के स्पेक्ट्रम से मेल नहीं खाती थीं। इसलिए यह सोडियम तो नहीं है, लेकिन किसी नए तत्व की सम्भावना तो बनती थी। इसे सूर्य के ग्रीक नाम हेलिओस के आधार पर हीलियम नाम दिया गया। बाद में 1895 में विलियम रेमसे ने प्रयोगशाला में यूरेनियम के खनिज से हीलियम को प्राप्त किया।

इसी तरह सूर्य के कोरोना में रहस्यमयी स्पेक्ट्रल रेखा दिखाई दी जिसे कोरोनियम नाम दिया गया था। उसके रहस्य को जानने के लिए एक अन्य बॉक्स देखिए।

कोरोनियम-नेबुलियम का किस्सा

1869 के सूर्य ग्रहण के दौरान अलग-अलग स्पेक्ट्रोस्कोपी अवलोकनों में एक हरे रंग की लकीर दिखाई दे रही थी। अन्य ज्ञात तत्वों के स्पेक्ट्रम के साथ मिलान पर भी गुत्थी नहीं सुलझी। चूँकि इन हरी लकीरों को सूर्य के कोरोना वाले हिस्से में देखा गया था इसलिए इसका नाम कोरोनियम रखा गया। वैज्ञानिकों का अनुमान था कि यह कोरोना में देखा गया है इसलिए यह हाइड्रोजन से हल्का होगा। लेकिन मैंडलीव की आवर्त सारणी में हाइड्रोजन से हल्के तत्व के लिए कोई जगह ही नहीं थी इसलिए इसे आवर्त सारणी में शामिल नहीं किया गया।

1864 में हायगेन ने आकाश में कुछ नेबुला के स्पेक्ट्रोस्कोपी अध्ययन में हरी चमकीली रेखाओं को देखा था। यह स्पेक्ट्रम भी तब तक धरती पर ज्ञात किसी तत्व से मेल नहीं खाता था। चूँकि इसे नेबुला में देखा गया था इसलिए इसका नाम नेबुलियम रखा गया। इसे भी आवर्त सारणी में कोई जगह नहीं मिल सकी।

कोरोनियम और नेबुलियम की फाइल काफी समय तक ठण्डे बस्ते में पड़ी रही। 1940 में स्वीडिश वैज्ञानिक बी. एडलेन ने इस गुत्थी को सुलझाया। उन्होंने बताया कि सूरज पर काफी उच्च ताप (6000 डिग्री कैल्विन) पर सामान्य तत्व कुछ हटकर असाधारण स्पेक्ट्रम देते हैं। ऐसे उच्च तापमान पर परमाणु अपने अन्तिम कक्ष में मौजूद एक या ज़्यादा इलेक्ट्रॉन त्यागकर आयनिक अवस्था में पहुँच जाते हैं। इस अवस्था में उनके स्पेक्ट्रम अपने सामान्य स्पेक्ट्रम से एकदम भिन्न होते हैं।

नेबुलियम साधारण ऑक्सीजन परमाणु का आयनित रूप था जिसके दो इलेक्ट्रॉन निकल गए हों। कोरोनियम लोहे के परमाणु का उच्च आयनित रूप था जिसमें 13 इलेक्ट्रॉन मौजूद हों। कुल मिलाकर लगभग 70 साल बाद कोरोनियम और नेबुलियम के नए तत्व होने के दावे पर पूर्ण विराम लग पाया।

की उपस्थिति के बारे में बुन्सन ने बताया कि चमकीली लकीरों का प्रकाश सूरज के गरम गैस वाले हिस्से से आता है और गहरी काली रेखाएँ सूरज के बाहरी अपेक्षाकृत ठण्डे हिस्से द्वारा प्रकाश के अवशोषण की वजह से बनती हैं।

इस दौर की एक प्रमुख घटना थी - सूर्य ग्रहण के फोटोग्राफ लेना। इससे पहले लोग ग्रहण के पलों को यादों में संजोए रखते थे। कभी-कभार ग्रहण के उन पलों का अनुभव कोई लिख देता था। कोई कलाकार रंग-कूची की मदद से ग्रहण को कैनवास पर उतार दे तो सुभानल्लाह। फ्रांस के लुइस डेगुरर ने 1839 में फोटोग्राफिक प्लेट पर तस्वीर को उभारने में सफलता हासिल की थी। जल्द ही सूर्य प्रकाश के वर्णक्रम की भी तस्वीर ली गई। 1851 में हुए पूर्ण सूर्य ग्रहण की तस्वीरें भी खींची गई और उन्हें लंदन में प्रदर्शित भी किया गया। फोटोग्राफी

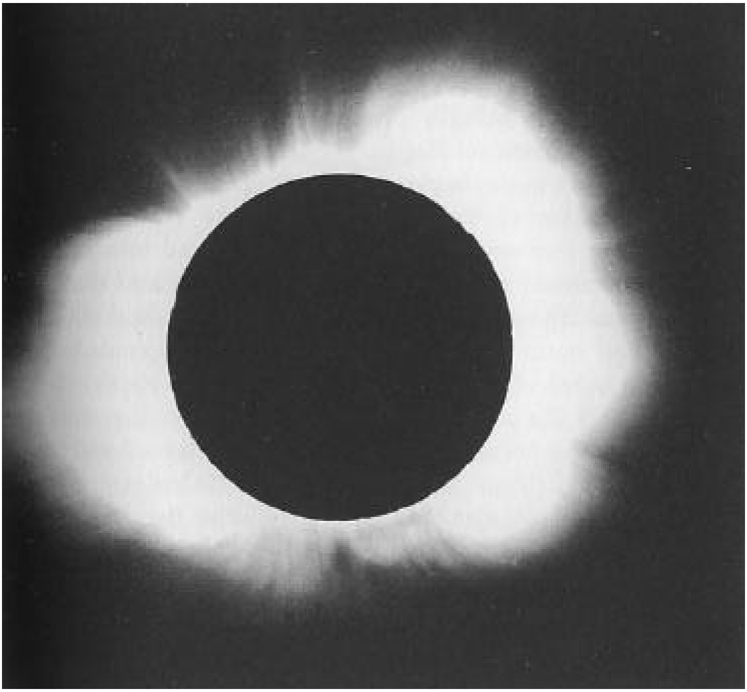

पूर्ण सूर्य ग्रहण का एक अद्‌भुत पल जब चाँद ने सूरज को पूरी तरह ढँक लिया है और सूर्य का कोरोना दिखाई दे रहा है। काली चकती अमावस्या का चाँद है।

ने खगोल की दुनिया ही बदल दी। फोटोग्राफ और स्पेक्ट्रम खगोलीय शोध के प्रमुख औज़ार बन गए और प्रमाण के रूप में मान्य होने लगे। इसके बाद कई तारों, ग्रहों, उपग्रहों, उल्का पिण्डों, आकाश गंगा आदि की तस्वीरें हमारे पास उपलब्ध होने लगीं।

1850 के बाद यातायात और संचार के साधन भी काफी विकसित हो गए थे जिसकी वजह से वैज्ञानिक बिरादरी दुनिया के किसी भी कोने में जाकर सूर्य ग्रहण देख सकती थी। आप भी यह सवाल कर सकते हैं कि जब मोटे तौर पर सूर्य ग्रहण के बारे में काफी बातें मालूम हो गई थीं तो दुनिया के कोन-कोने तक जाकर हर बार सूर्य ग्रहण देखने की ज़हमत क्यों उठाई जा रही थी? दरअसल, सूरज किन-किन रासायनिक पदार्थों से बना है और उसके सबसे बाहरी भाग कोरोना के बारे में ठोस जानकारी जुटाना अभी भी बाकी था। इसलिए वैज्ञानिक बिरादरी बहुत पहले से उन जगहों का चुनाव कर लेती थी जहाँ से पूर्ण

सूर्य ग्रहण दिखेगा। स्थान का चुनाव करके भारी साजो-सामान और दल-बल के साथ वैज्ञानिक वहाँ पहुँच जाते थे और ग्रहण सम्बन्धी सूक्ष्म अवलोकन करते थे।

सूरज का सबसे बाहरी हिस्सा या वायुमण्डल जिसे कोरोना कहा जाता है, वह सिर्फ पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय दिखाई देता है। इसलिए कोरोना के अध्ययन के लिए सूर्य ग्रहण एक खास मौका बनकर आता है। ग्रहण के अलावा भी सूर्य का अध्ययन किया जा सकता है। इन अध्ययनों से भी सूर्य के कोरोना, फोटोस्फीयर आदि अलग-अलग भागों के तापमान, सूरज के रासायनिक संघटन और सूर्य में होने वाली रासायनिक क्रियाओं के बारे में काफी जानकारियाँ जुटाई जा सकीं।

प्रकाश आकाश को मोड़ता है

20वीं सदी में सूर्य ग्रहण को आइंस्टाइन के सापेक्षता के सिद्धान्त की जाँच की प्रमुख कसौटी बनाया गया।

अल्बर्ट आइंस्टाइन ने सापेक्षता के सिद्धान्त में स्पेस-टाइम, गुरुत्वाकर्षण, आकाश की वक्रता आदि के बारे में विचार किया था।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रकाश आकाश (स्पेस) में एक तरंग के रूप में गमन करता है। अतः यह आकाश में परिवर्तन का प्रत्युत्तर दे सकता है। या और सरल शब्दों में कहें तो गुरुत्वाकर्षण आकाश में वक्रता

बिना ग्रहण भी सूर्य का अवलोकन सम्भव

वैसे आप दो रुपए के सिक्के या कोल्ड ड्रिंक के ढक्कन को आँखों से कुछ दूरी पर रखकर सूर्य ग्रहण करवा सकते हैं। लेकिन सूर्य के कोरोना आदि के अवलोकन के लिहाज़ से यह कोशिश पर्याप्त नहीं है।

1868 में भारत में दिखाई दिए सूर्य ग्रहण के दौरान पी.जे.सी. जेनसन ने ग्रहण के अलावा सामान्य दिनों में सूर्य के अवलोकन हेतु विशेष उपकरणों की ज़रूरत पर ज़ोर दिया था। इस दिशा में उन्होंने खुद भी कोशिश की थी। फ्रांसीसी खगोलविद बर्नेट लाउट ने कोरोनोग्राफ नामक उपकरण बनाया और इसे फ्रांस की 9000 फुट ऊँची पर्वत चोटी पर लगवाया। ज़्यादा ऊँचाई पर अवलोकन शालाएँ बनाने का एक फायदा यह है कि ऊँचाई पर धरती का वायुमण्डल विरल होता जाता है और वायुमण्डल द्वारा अवलोकन में डाली जा रही बाधाएँ भी कम होती जाती हैं। उसके बाद यूरोप और अमरीका में भी ऊँचे पहाड़ों पर खगोलीय अवलोकन शालाओं में कोरोनोग्राफ लगाकर रोज़ाना सूरज के अवलोकन की व्यवस्था की गई। इस उपकरण में सूर्य की चमक को मन्द करने के उपाय किए गए थे। मसलन, खासतौर पर तैयार किए गए लैंस, पोलोरॉइड और अन्य सामग्री भी होती थी। सूर्य के बारे में हमारे ज्ञान को पुख्ता करने में कोरोनोग्राफ ने काफी योगदान दिया है।

उत्पन्न करे और प्रकाश इस वक्र आकाश के समान्तर चले। वक्रता के समान्तर चलना ही वक्र आकाश में सबसे सीधा मार्ग है।

इस बात को हम प्रकाश का मुड़ना कहें या आकाश की वक्रता लेकिन क्या ऐसा वाकई होता भी है या नहीं यह दूर की कौड़ी थी। आइंस्टाइन ने भी ख्याली प्रयोग के आधार पर ऐसा कहा था, करके तो देखा नहीं था। परन्तु कुछ गणनाओं के आधार पर आइंस्टाइन ने प्रकाश कितना मुड़ेगा इसका आँकड़ा दिया था। 1915 के बाद गुरुत्वीय क्षेत्र में प्रकाश के मुड़ने को लेकर प्रयोग की तैयारियाँ शुरू हो चुकी थीं।

खगोलविदों का मानना था कि सूरज के ठीक पीछे मौजूद तारे का प्रकाश जब सूरज के पास से गुज़रता है तो गुरुत्वाकर्षण की वजह से तारे से आने वाला प्रकाश अपने मार्ग से विचलित हो जाता है और प्रकाश किरण थोड़ी मुड़ जाती है। लेकिन प्रकाश किरण के मुड़ने की जाँच सिर्फ पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान ही हो सकती थी। इस जाँच के लिए ज़रूरी था कि

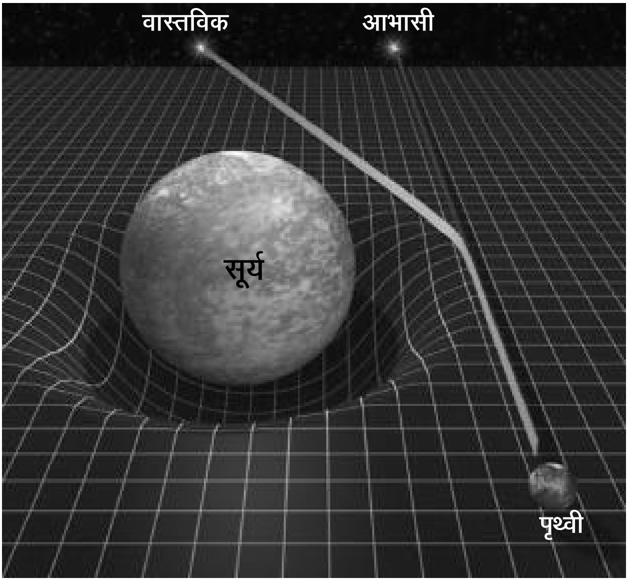

प्रकाश या आकाश का मुड़नाः एक मॉडल के माध्यम से प्रकाश किरणों के मुड़ने के कारण तारे की वास्तविक और आभासी स्थिति में आया फर्क यहां दिखाया गया है। हकीकत में सूर्य के पीछे के तारों को देखने के लिए पूर्ण सूर्य ग्रहण एक नायाब मौका बनकर आता है।

निकट भविष्य में जो भी पूर्ण सूर्य ग्रहण होने वाला है उस समय सूरज के ठीक पीछे पृष्ठभूमि में दिखाई देने वाले तारा समूह के फोटोग्राफ काफी पहले से ले लिए जाएँ और पूर्ण ग्रहण के दौरान काले होते आसमान में जब वह तारा समूह सूरज के पीछे प्रकट होगा तब एक बार फिर उस तारा समूह की तस्वीर ली जाए। चूँकि ग्रहण के समय इस तारे का प्रकाश सूरज के पास से होकर हमारे पास आ रहा होगा इसलिए सूरज के गुरुत्वाकर्षण की वजह से प्रकाश किरण में विचलन होगा। इस फोटो की तुलना काफी पहले लिए फोटो से (जब यह तारा मण्डल सूरज के आस-पास न हो) करने पर प्रकाश के मुड़ने की बात साबित हो जाएगी।

अगला सूर्य ग्रहण 1919 में होने वाला था। 29 मई 1919 के सूर्य ग्रहण पर सबकी नज़रें टिकी हुईं थीं। ग्रहण के समय सूरज के ठीक पीछे की पृष्ठभूमि में दिखाई देने वाले तारा समूह (Hyades) के फोटोग्राफ काफी पहले से लिए जा चुके थे। दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका में यह पूर्ण ग्रहण दिखाई देने वाला था। इंग्लैंड के आर्थर एडिंगटन ने प्रकाश के विचलन की जाँच के लिए दो दल गठित किए, एक दल ब्राज़ील भेजा गया और दूसरा पश्चिमी अफ्रीका के प्रिंसिपी द्वीप समूह गया जिसकी अगुवाई एडिंगटन कर रहे थे।

बादलों की आँखमिचौली के बीच आखिरकार, एडिंगटन फोटो खींचने में सफल रहे। पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान खींचे गए फोटोग्राफ की तुलना पहले से खींचे गए फोटो से करने पर प्रकाश किरण में विचलन की बात साबित होती थी। 1922 के सूर्य ग्रहण के दौरान एक बार फिर यही सब दोहराकर पुष्टि कर ली गई।

जब एक बार सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त की परख हो गई तो ब्रम्हाण्ड को समझने के लिए एक नज़रिया भी मिल गया। आइंस्टाइन के बाद भी अन्य लोगों ने इस काम को आगे बढ़ाया है।

यहाँ मैंने पूर्ण सूर्य ग्रहण के सिर्फ तीन प्रमुख पड़ावों की बात की है। ग्रहण के सटीक नक्शे बनाने की शुरुआत, ग्रहण में फोटोग्राफ-स्पेक्ट्रोस्कोपी का इस्तेमाल और सूर्य ग्रहण से सापेक्षता सिद्धान्त का सम्बन्ध और ब्रम्हाण्ड को समझने का एक नज़रिया मिलना। मुझे ऐसा लगता है कि इन पड़ावों से विज्ञान में जाँच-पड़ताल और खोजबीन के बहुत-से नए दरवाज़े खुले हैं।

माधव केलकर: संदर्भ पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

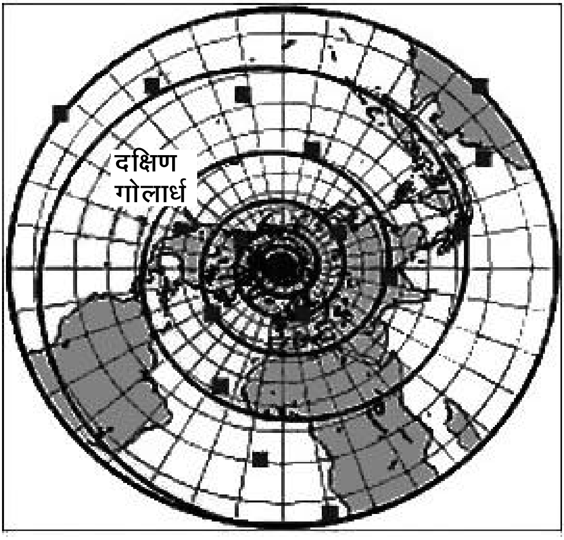

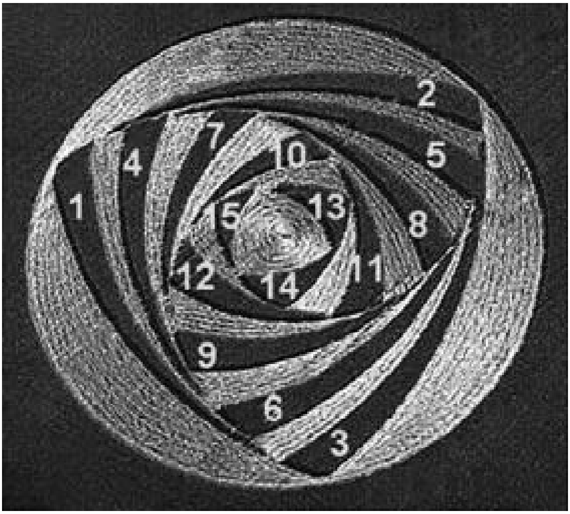

सारोस चक्र 127 के सन् 1875 से 2127 के बीच के 15 सूर्य ग्रहणों का पथ। 21जून 2001 का सूर्य ग्रहण चित्र में दर्शाया गया 8वाँ सूर्य ग्रहण है। ये सब ग्रहण भूमध्य रेखा से शुरू होकर दक्षिण गोलार्ध के 72 डिग्री देशांश तक जाएँगे।

यह सारोस चक्र 10 अक्टूबर 991 को शुरू हुआ और 82 सूर्य ग्रहणों के बाद 21 मार्च 2452 को खत्म होगा।